

जनचेतना का प्रगतिशील कथा-मासिक

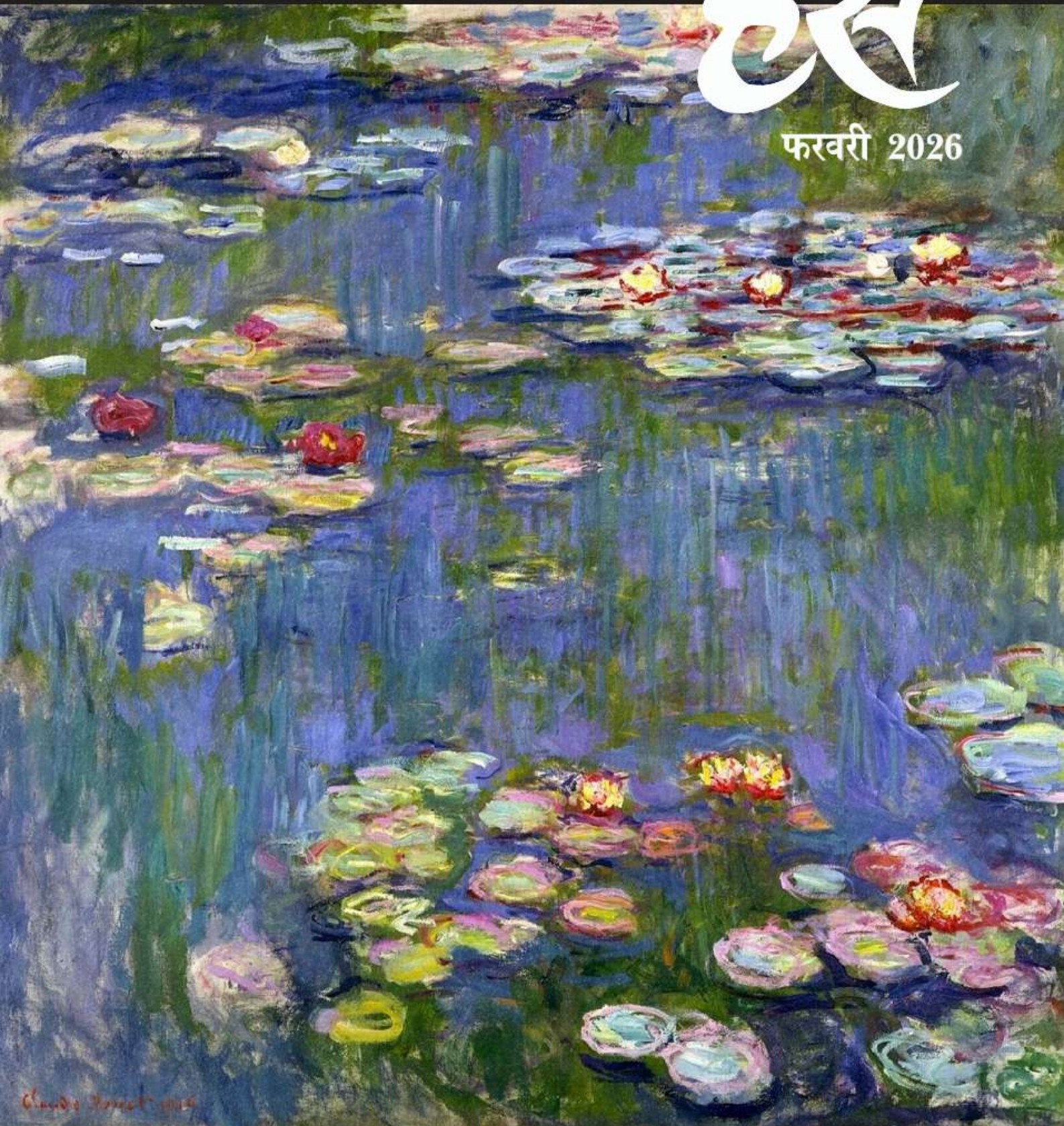
ISSN 2454-4450



मूल्य ₹ 75

हंस

फरवरी 2026



# स्त्री के परंपरागत विचारों की शुद्धि

पुष्पराज यादव

परख

**चिं**तक राल्फ फॉक्स ने लिखा है कि उपन्यासकार का अपने देश के वर्तमान और अतीत दोनों के प्रति एक विशेष दायित्व होता है. अतीत से मिली विरासत उसके लिए महत्वपूर्ण है. उससे पता चल जाता है कि देश की सांस्कृतिक विरासत के वे कौन से अंश हैं जो आज भी सार्थक हैं. वर्तमान के बारे में वह जो कुछ कहता है, उसका भी महत्व है, कारण कि उससे आशा की जाती है कि वह अपने युग के अत्यंत जीवंत तत्वों को व्यक्त करेगा.

हमारे विचारों का गहन आत्मालोचन और विश्लेषण ही हमें एक सभ्य समाज का उत्कृष्ट जीव बनाता है. लेखिका वन्दना यादव का उपन्यास 'शुद्धि' उत्तर भारत की संस्कृति और आदिम परंपराओं के अनवरत प्रवाह एवं उसका हमारे आधुनिक जीवन में घुले-मिले होने की पड़ताल करता है. उपन्यास की शुरुआत राजस्थान के मध्यमवर्गीय ग्रामीण परिवार के वयोवृद्ध मुखिया शेरसिंह की मृत्यु की घटना से शुरू होती है. उपन्यास का कथानक और पूरी यात्रा इसी दिवंगत मुखिया की विधवा पत्नी रामप्यारी के गहन-आत्मविश्लेषण और सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधों की पड़ताल

से होती हुई, आगे बढ़ती हुई अपने उद्देश्य तक जाती है. कोई भी विचार या परंपरा तभी तक प्रासंगिक रहती है जब तक समकालीन समाज की प्रगति और उसके विकास में उसकी भूमिका सकारात्मक रहती है, जब वह इस कसौटी पर सही नहीं ठहरती तो अमूमन लोग उसके केंचुल को उतार फेंकना चाहते हैं या बदल डालना चाहते हैं.

लेखिका ने इस मत की स्थापना करते हुए अपने सशक्त लेखन का परिचय दिया है. मुख्य पात्र रामप्यारी के आत्मचिंतन और हिंदू मिथकीय संस्कृति में उसकी आजन्म आस्था से जन्मे उसके मृत पति की आत्मा से उसके अंतःसंवाद और पुनर्जन्म जैसे मिथकीय चरित्र सृजन ने उपन्यास को आगे बढ़ाने में विशेष महत्व दिया. दरअसल उपन्यास में शेरसिंह की आत्मा के जरिए उसकी विधवा पत्नी रामप्यारी की मनोदशा, परिवार के सदस्यों और रिश्तेदार आदि के व्यवहार-परिवर्तन, यहां तक कि उसके अपने बेटे ईश्वरसिंह तक की चारित्रिक दुर्बलता,



छल-कपट आदि को उभारा गया है. मृत्यु से पूर्व शेरसिंह का पुनर्जन्म और आस-पास के समाज में अपनी जिस रौबीली छवि को बनाए रखने की छटपटाहट थी वही उसकी मृत्यु के बाद अब उसकी आत्मा के जरिए चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है. हर चीज में तरह-तरह से

कमियां खोज लेने वाला शेरसिंह मरने से पहले पास-पड़ोस और रेगिस्तान की तपन से उकताया हुआ अपने पुनर्जन्म की जो कल्पना पंजाब के किसी संभ्रांत किसान के घर में करता रहा वही उसकी मृत्यु के बाद रामप्यारी के जेहन की फैंटेसी बनकर उभरा हुआ प्रतीत होता है. अपनी पितृसत्तात्मक ठसक में जिसने औरत को कभी बराबरी का हकदार और जीवन का साझीदार नहीं समझा, परदे और देहरी के भीतर की दुनिया के फैसलों तक महदूद रखी गई स्त्री एक लंबी उम्र इस तरह गुजारने के बाद अपने पति की ना-मौजूदगी में अपने अस्तित्वबोध

से भर उठती है। वह अपने किरदार और अहमियत को समझते हुए अपनी ढलती उम्र के बावजूद जो सामाजिक परिवर्तनकारी कदम और अहम फैसले लेती हुई वर्तमान को अंगीकार करती है वह सराहनीय है। उपन्यासकार का नई-पुरानी पीढ़ी का पारंपरिक द्वंद्व दिखाना और नए युग की अच्छाइयों को अपने बुजुर्ग पात्रों द्वारा स्वीकृत कराना बेहतर संकेत है। रामप्यारी का नब्बे वर्ष की उम्र में भी प्रतिरोध और और नए 'शुभ' के स्वीकार के प्रति अग्रसर होना इस बात के प्रमाण हैं, वह विधवा होकर भी समाज के बासी रीति-रिवाजों और बंधनों को तोड़ते हुए आगामी पीढ़ियों के लिए एक प्रगति और उन्मुक्त विचारशीलता की छाप छोड़ती है।

पितृसत्ता के अंदरूनी तत्वों पर बात की गई है जो मर्दों की बनाई व्यवस्था में इस तरह औरत को जकड़ चुकी है कि वह अपना वर्गीय हित भी एक आवाज में नहीं उठा पा रही है। उपन्यास में नई पीढ़ी की स्त्रियों का रोष भी मुखर रूप में उभरकर सामने आता है। यह आधी सदी पार वाली स्त्री का अनुभव ही है जो अब नई पीढ़ी को बिगुल फूंक संघर्ष और समाज में अपनी हिस्सेदारी को बढ़कर हासिल करने के लिए प्रेरित करता है।

लेखिका ने स्त्री या अन्य जो भी आज के समय में और इतिहास में शोषण के शिकार रहे हैं, उसका मूल कारण उनको शिक्षा और ज्ञान की दुनिया से बहिष्कृत किए जाने को माना है। जो कि हमारे बहुजन नायक फुले दंपति, डॉ. आंबेडकर और पेरियार समेत दर्जनों विचारकों की भी मान्यता रही है।

उपन्यास की मूल संवेदना समाज की परंपराओं की पड़ताल और उसके परिष्कार से जुड़ी है इसलिए इसमें हजारों वर्ष पुराने रीति-रिवाजों और धार्मिक विश्वासों पर भी लेखक ने विचार किया है और अपनी वैज्ञानिक सोच और समावेशी दृष्टि का परिचय दिया है। हालांकि कुछ पाठकों को

इसमें पुनर्जन्म की कल्पना और आदिम रीतियों की सार्थकता के पिष्टपेषण करने का भ्रम हो सकता है लेकिन यह संस्कार और विचार के द्वंद्व से होते हुए विचार के आधुनिक खुरदुरे धरातल पर उतरने की एक सीढ़ी मात्र है, अन्यथा सब एक मिथ है। शेरसिंह की आत्मा के माध्यम से लेखक ने पुरोहितवाद के पाखंड और लूट, आडंबर और धर्म को धंधे के रूप में प्रचारित किए जाने का खूब पर्दाफाश किया है।

उपन्यास में संयुक्त परिवार की टूटन, आर्थिक दबावों और संवेदनहीनता को प्रमुखता से दर्शाया गया है। आधुनिक शहरी या बाजारवादी संस्कृति से घिरे मनुष्य का रूपांकन पुष्कर और सीमा के माध्यम से सामने आया है। एक तरफ कुणाल से उसकी मां की बातचीत उपन्यास में रिश्तों के खोखलेपन और स्वार्थ तो दूसरी तरफ चंद दिनों की छुट्टियों पर तेरहवीं तक सबके साथ 'इंजॉय' करने आए दूर-दराज के रिश्तेदारों का लगातार चार मौतों के बाद बढ़े हुए शुद्धि-संस्कार के बाद असंवेदनशील चेहरा भी सामने आता है। परिवार की जिस बुजुर्ग स्त्री से किसी को सरोकार न था, तेरहवीं तक उसकी भी दीर्घायु की कामना वे सब लोग करने लगते हैं जो बाहर से इस परिवार के दुख में शरीक होने बड़े तामझाम के साथ आए थे। ऐसी ही संवेदनहीन स्थिति उस परिवार की भी होती है जो अपने घर में मातमपुर्सी पर आए लोगों का पूरा लेखा-जोखा लिए बैठा था। शेरसिंह का बड़ा बेटा ईश्वर इस बात को प्रकट करते हुए जान पड़ता है।

राजस्थान के एक दूर-दराज गांव में शहरी-संस्कृति से कोसों दूर नब्बे वर्षीय रामप्यारी और घर की छोटी बेटी के जाति-भेद के विरोध की आवाज और सामाजिक-आर्थिक असमानता को दूर करने के प्रयास को दिखाना—इस उपन्यास को विशिष्ट बनाता है। घर के नौकर भरतिए जो कि तथाकथित दलित जाति से संबंधित है, उसके

हक में रामप्यारी के फैसले अहम संकेत छोड़ते हैं। नई पीढ़ी की नुमाइंदा नैना उसके अछूत होने के कारण भेदभाव का विरोध करती है। उपन्यास के अंत तक आते-आते रामप्यारी का घर के गरीब दलित नौकर को अपनी पैतृक संपत्ति में हिस्सा और मुखानि का अधिकार अपने लालची, संवेदनहीन बेटे ईश्वर सिंह को न देकर भरतिए को दिया जाना जाति-व्यवस्था के साथ-साथ परिवारवादी व्यवस्था में भी आमूल परिवर्तन का संकेत देता है। जीवन के इस पड़ाव पर उसका कबीर को पढ़ना दरअसल व्यवस्था-परिवर्तन और 'रिफॉर्मलिस्ट अप्रोच' को दर्शाता है।

इस प्रकार उपन्यास की कथावस्तु मूलतः आत्मा की शुद्धि और मानवीय धरातल पर कदम रखते हुए समाप्त होती है।

उपन्यास की भाषा और बुनावट ग्रामीण बोलचाल और राजस्थानियत से लबरेज है, लेकिन कई जगहों पर ठेठ आंचलिक शब्दों को जबरन हिंदीमय करने की कोशिश होती-सी लगती है जिससे पढ़ते समय थोड़ी अरुचि भाषा से अनजान पाठक को हो सकती है। यदि पाठक धीर-गंभीर नहीं है तो घटनाओं की आकस्मिकता और लगातार शोकपूर्ण माहौल भी उसे घुटन महसूस करा सकता है। पर इस उपन्यास को मनोरंजन की दृष्टि से मूल्यांकित न करके संदेश और सामाजिक अवदान के लिए पढ़ा जाना चाहिए।

□

पुस्तक : शुद्धि

लेखक : वन्दना यादव

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

मूल्य : 370 रुपये

संपर्क : शोधार्थी, हिंदी साहित्य, भारतीय भाषा केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली-110067 मो. 9760557187 ईमेल : pushprajyadav145@gmail.com